International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 14 Issue 6 || June 2025 || PP. 01-06

दाराशिकोह एवं अध्यात्मवाद

डॉ० रविन्द्र कुमार गौतम
एसोसिएट प्रोफेसर–इतिहास विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी, उ०प्र०,

शोध सारांश :
प्रस्तुत शोध पत्र दाराशिकोह की बादशाह बनने की महत्वकांक्षा एवं उसका अध्यात्मवाद की ओर झुकाव पर अवलम्बित है। दाराशिकोह के जन्म के बाद ही पिता बादशाह शाहजहॉ एवं माता मुमताज महल के साथ ही उसके सगे सम्बन्धी एवं दरबार के प्रमुख अधिकारी उसे अगले बादशाह के रूप में महत्व दिये। शाहजाहॉ के उत्तराधिकारी के रूप में उसका पालन पोषण एवं शिक्षा–दिक्षा हुई। यह परिस्थितियाँ दाराशिकोह को बादशाह बनने की महत्वकांक्षा जागृत करने में महती भूमिका निभाई। बादशाह शाहजहॉ ने युवराज दाराशिकोह का अपने सिंहासन के ठीक नीचे लगवाने के साथ ही जब वह बीमार था तो अपने विश्वस्त दरबारियों एवं प्रधान अधिकारियो को हुक्म दिया कि दारा को बादशाह मानकर उसके आज्ञा का पालने करें। ऐसी स्थिति में दारा बादशाह की तरह कार्य करने ने लगा था लेकिन 14 मार्च 1659 ई० को देवराई के युद्ध में पराजय के उपरान्त उसकी बादशाह बनने की महत्वकांक्षा चकनाचूर हो गयी।

एक ओर जहाँ दाराशिकोह बादशाह बनना चाहता था वहीं दूसरी ओर अध्यात्म में उसकी गहरी रूचि थी और रहस्यवाद की ओर उसका झुकाव था, वह पराक्रमों की अपेक्षा संतो एवं सूफियों के अद्भूत कार्य एवं चमत्कार के कारण उनमें ज्यादा रूचि रखता था। अतः वह बाइबिल, कुरान, हदीश, सूफी साहित्य और वेदान्त दर्शन का अध्ययन किया।उसने संस्कृत के विद्वानों को आश्रय दिया और उनकी सहायता से 52 उपनिषदों का संस्कृत से फारसी में अनुवाद करवाया। उक्त कार्यो की वजह से दारा को हिन्दुओं ने अकबर के अवतार के रूप में देखने लगे थे।

उल्लेखनीय है कि दारा का अध्यात्मवाद की ओर झुकाव के कारण एक कुशल प्रशासक या सेनापति बनने में बाधक साबित हुई क्योंकि वह संतो, फकीरों जादूगरों पर विश्वास करता था। उसका यह भी मानना था कि वह संतो फकीरों जादूगरो की मदद से युद्ध में विजय प्राप्त करेगा लेकिन ऐसा नहीं हुआ। दाराशिकोह के बारे में यह कहा जा सकता है कि वह एक सामाजिक एवं सांस्कृति साहिष्णुता को स्थापित करने में सफल रहा।

बीज शब्द–*सहिष्णुता, संघर्ष, सूफी, धर्माधिकारी, फकीर*

Date of Submission: 25-05-2025 Date of acceptance: 06-06-2025

I

दाराशिकोह का जन्म 20 मार्च 1615 ई0 दिन सोमवार को रात्रि में हुआ है जिसकी शाहजहाँ के उत्तराधिकारी के रूप में सभी परिकल्पना करते है पिता खुर्रम एवं माता मुमताज महल दारा शिकोह के जन्म से बहुत ज्यादा खुश थे, क्योंकियह मुगल राजवंश का उत्तराधिकारी था। दाराशिकोह का नामकरण पितामह जहाँगीर द्वारा किया गया था तथा दरबार में जश्न मनाया गया।दारा के जन्म के दो वर्ष बाद ही पिता खुर्रम को दक्षिण का सुबेदार (वायसराय) नियुक्त किया गया था। खुर्रम दक्षिण में संघर्षपूर्ण जीवन व्यतीत किया था। 29 अक्टूबर 1627 ई0 को पितामह जहाँगीर की राजौर में मृत्यू के उपरान्त 4 फरवरी 1628 ई0 को खुर्रम का आगरा में राज्याभिषेक होता है। और वह शाहजहाँ के नाम

सेमुगल सिंहासन पर आसीन होता है। शाहजहाँ बादशाह बनने के बाद अपने प्रिय पुत्र दाराशिकोह को 1000 रुपये दैनिक भत्ता के रूप में अनुदान तथा दो लाख रुपये नकद प्रदान करता है जोराज्याभिषेक के रस्म अदायगी के क्रम में प्राप्त राजकीय दान में उसके हिस्से थे।.

दाराशिकोह ने प्रारम्भिक शिक्षा कैसे प्राप्त की इसका विवरण समकालीन ऐतिहासिक स्रोतो में स्पष्ट रूप से उल्लेख नही है। यहाँ तक कि समकालीन यूरोपीय यात्री जैसे मनूची, वर्नियर, पीटर मुण्डी आदि भी उसके प्रारम्भिक शिक्षा के बारे में विवरण नही देते है। केवल अब्दुल हमीद लाहौरी कृत पादशाह–नामा में विवरण मिला है कि दारा शिकोह 13 वर्ष की आयु में सर्वप्रथम शिक्षा हेतु 'बमकतब रफतन' जाता है। जहाँ इसकेशिक्षक मुल्ला अब्दुल लतीफ सुल्तानपुरी नियुक्त हुए थे।[1]दारा का अध्ययन परम्परागत अध्ययन प्रणाली जो प्रारम्भ से चली आ रही थी उसी क्रम में प्रारम्भ होती हैं। उसे भी पूर्व मुगल राजकुमारों की तरह कुरान, फारसी काव्य के प्रमाणित ग्रंथ तथा तैमूर के इतिहास की शिक्षा प्रदान की जाती है। दाराशिकोह विद्यानुरागी था और वह आजीवन विद्यार्थी ही रहा। उसे सुलेखन में दक्षता हासिल थी, वह अति सुन्दर लिखता था जिसका प्रमुख कारण सुप्रसिद्ध सुलेख कार और उसका गुरु अब्दुर्रशीद दायलेमी का प्रभाव था।[2] दारा शिकोह को रहस्यवाद प्रिय था, वह पराक्रमों की अपेक्षा संतो एवं सूफियों के अद्‌भूत कर्मो में ज्यादा रुचि रखता था। उसकी इस रुचि का परिणामयह हुआ कि वह बाइबिल, कुरान, हदीश, सूफी सात्यि और वेदान्त दर्शनों का अध्ययन किया। उसने संस्कृत के विद्वानों को आश्रय दिया और उनकी सहायता से भगवद्‌गीता और 52 उपनिषदों का अनुवाद किया। उसकी पहचान उदारवादी के रूप में होने लगी। हिन्दुओं की धारणा हो गयी कि वह अकबर की आत्मा का अवतार हैं। आगामी संतति के लिए दाराशिकोह का नाम दर्शन शास्त्र के पंडित का प्रतीक बन गया।[3]

01 फरवरी 1633ई० को दाराशिकोह का विवाह बहुत घूम–धाम से होता है। मुगल काल की यह सबसे महंगी शादी थी। इस विवाह में कुल 32 लाख रुपये खर्च हुए थे जिसमें से जहाँआरा ने 16 लाख रुपये दी थी। दाराशिकोह का विवाह उनकी माँ मुमताज महल की इच्छानुसार राजकुमार परवेज की पुत्री करीमुन्निसा नादिरा बेगम से हुआ। इस विवाह के अवसर पर महल को सजाया गया, मनोरंजन के लिए संगीत एवं नाच–गाने की भव्य व्यवस्था की गयी।

विवाह का संस्कार सुप्रसिद्ध सुन्नी मतान्ध मुल्ला काजी मुहम्मद इस्लाम ने करवाया था। इस विवाह मे बघु को कपीन/मेहर (देवधन) पांच लाख रुपये दिये गये थे। दाराशिकोह नादिरा से बेहद प्यार करता था। यूरोपीय यात्री मनूची का कहना है कि एक हिन्दू नर्तकी राणादिल पर दाराशिकोह पूरी तरह सम्मोहित हो गये थे और बिना नियम पूर्वक सम्बंध भी स्थापित किये थे। अन्त में बादशाह शाहजहाँ राणादिल से दाराशिकोह कोविवाह की अनुमति दे दी।[4]

दाराशिकोह एक ओर जहाँ अध्यात्म में गहरी रुची रखता था, वही दूसरी ओर वह स्वयं शाहजहाँ का उत्तराधिकारी समझता था तथा पिता की अस्वस्थता की स्थिति में शासन की बागडोर अपने हाथ में रखा था।[5] शाहजहाँ भी दारा को अपना सबसे प्रिय पुत्र मानता था तथा अपने पूरे शासनकाल में वह दारा को केवल 15 महीने ही दरबार से दूर रख पाया था। दारा को कोई सैनिक अभियान में सफलता नही मिली थी फिर भी उसे 60 हजार का जात प्राप्त हुआ था। वहीं शुआ एवं औरंगजेब को 20 हजार का जात मिला था। बीमारी के दौरान शाहजहाँ ने अपने विश्वस्त दरबारियों एवं प्रधान अधिकारियों को हुक्म दिया था कि दारा को बादशाह मानकर उसकी आज्ञा माने।[6]इस समय दारा अपने एक दो विश्वासपात्र मंत्रियों को छोड़कर किसी को भी बादशाह तक जाने नही देता था। पत्रवाहकों पर कड़ी नजर रखता था। अपने भाइयों के पास बंगाल, गुजरात, और दक्षिण को जाने वाले दूतों एवं पत्रों पर रोक लगा दी।लेकिन औरंगजेब को दाराशिकोह एवं दरबार की प्रत्येक गति–विधियों की सूचना बहन रोशनआरा बेगम के द्वारा प्राप्त होती रहती थी। सम्राट शाहजहाँ द्वारा दाराशिकोह को कई सूबे की जिम्मेदारी दी गयी थी लेकिन शहजादा दाराशिकोह उन सूबों में स्वयं न जाकर अपने प्रतिनिधियों के द्वारा शासन संचालित कर रहा था। दाराशिकोह को जो सूबा प्राप्त हुआ था इसमें (1) इलाहाबाद का सूबा प्रमुख है। इस सूबे का प्रशासन बकी वेग के द्वारा लगातार 12 वर्षो तक संचालित किया गया।

दाराशिकोह वहाँ केवल एक बार इस (1656–57) में गया था। इसी क्रम में (2) पंजाब का सूबा दारा को 1647 ई0 में प्राप्त हुआ था। कन्हार अभियान के दौरान दारा यहाँ पर एक वर्ष रहा था। पंजाब प्रान्त का ही लाहौर हिस्सा था। लाहौर से दारा को विशेष लगाव था क्योंकि प्रसिद्ध सूफी संत मिया मीर का निवास स्थान था। यही पर उसकी प्रिय पत्नी नादिरा बानू को दफन किया गया था। (3) गुजरात सूबा दारा को 1649 ई0 में प्राप्त हुआ था यहाँ का प्रभार अपने प्रिय बकी वेग जिसे बहादुर शाह की उपाधि प्राप्त थी जो इलाहाबाद का प्रभारी था को स्थानान्तरित कर दिया गया था। (4) मुल्तान – यहाँ भी दारा कभी नही गया था इस सूबे का प्रभार सैय्यद इज्जत खाँ को दिया गया था।. (5) काबूल– के सूबे में भी दारा कभी नही गया था बल्कि यहाँ का प्रशासन भी (बहादुर खाँ) बकीबेग के द्वारा ही संचालित किया था।इस प्रकार सम्राट शाहजहाँ द्वारा दारा को 5 सूबो का प्रभारी बनायागया और उसे दरबार में सम्राट जैसे व्यवहार करने का का अधिकार प्राप्त था जो निश्चित रूप में उत्तराधिकार के युद्ध कोआमंत्रित किया।

6 सितम्बर 1657 ई0 को शाहजहाँ गम्भीर रूप से बीमार हो जाता है। शाही हकीम की चिकित्सा के बावजूद वह स्वस्थ नहीं हो रहा था। एक हप्ते के बाद अब लोग कयास लगाने लगे थे कि बादशाह का जीवित रह पाना सम्भव नही है। यह सूचना शाहजहाँ के तीनो पुत्रो जो दरबार से बाहर जैसे सूजा (बंगाल) औरंगजेब (दक्षिण भारत) मुराद(गुजरात) मिली तो वह सभी स्वयं को बादशाह का उत्तराधिकारी घोषित करते हुए दिल्ली की ओर प्रस्थान किये। हालांकि बादशाह शाहजहाँ एक सप्ताह बाद काफी स्वस्थ हो गया था लेकिन दरबार से बाहर रह रहे शहजादों को इस सूचना पर विश्वास नहीं, हुआ और सभी इस आशंका में राजधानी की ओर बढ़े कि कही दाराशिकोह मुगलिया सिंहासन पर विराजमान न हो जाय। राजधानी से बाहर रह रहे तीन भाइयों के निशाने पर राजधानी में रह रहा बड़ा भाई दाराशिकोह था जिसे बादशाह अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। शहजादा दाराशिकोह जो मुगल सिंहासन पर विराजमान होना चाहता था लेकिन घरमत, सामूगढ़ और देवराई के युद्धों में पराजयबाद न केवल उसके भाग्य का सूरज ही अस्त होता है बल्कि उसके जीवन का भी अन्त हो जाता है। धरमत के युद्ध में औरंगजेव की विजय ने सभी राजनीति के जानकारों ने अंदाजा लगा लिया था कि मुगल सिंहासन का वास्तविक आराधिकारी औरंगजेब ही है। घरमत के युद्ध में शाही सेना का नेतृत्व कर रहे जसवंत सिंह का पराजित होना और युद्ध भूमि से भाग जाना न केवल शाही सेना बल्कि राजपूतो की वीरता पर भी प्रश्न खड़ा करता है।

धरमतकेयुद्ध में शाही सेना के पराजय के उपरान्त अब विद्रोही राजकुमार औरंगजेब को पराजित करने की जिम्मेदारी स्वयं शहजादा दाराशिकोह सम्भालते है। 29 मई 1658 ई० को सामूगढ़ में दारा शिकोह और औरंगजेव की बीच भयंकर युद्ध हुआ जिसमें दाराशिकोह पराजित हुआ औरयुद्ध भूमि से भागकर राति 9 बजे आगरा पहुंचा और अपने मकान में जाकर छुप गया।[7] बादशाह शाहजहाँ दाराशिकोह से मिलना चाहता था लेकिन दाराशिकोह सामूगढ़ के पराजय से इतना ज्यादा अपमानित एवं लज्जित था कि वह बादशाह से मिलने को इनकार कर देता है और कहता है कि ''मेरा लज्जित मुँह देखने की इच्छा आप त्याग कर दें और यही से मेरी लम्बी यात्रा का विदाई का आशीर्वाद दीजिए।'' दारा उसी दिन प्रातः काल 3:00 बजे अपनी पत्नी, पुत्रो पुत्री एवं नौकरों के बहुत सारे जवाहरात एवं का नकद रुपयों के साथ दिल्ली को प्रस्थान किया।[8] एक सप्ताह दिल्ली में सेना को सुसज्जित किया है और अब लाहौर के लिए प्रस्तान किया। औरंगजेब और उसके सेनापतियों द्वारा दारा का पीछा किया गया। दाराशिकोह अब लाहौर से मुल्तान की ओर प्रस्थान किया। औरंगजेब ने दारा का मुल्तान तक पीछा किया अब दारा मुल्तान से भागा। सितम्बर माह में भुजा के आक्रमण को रोकने के लिए औरंगजेब दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। दाराशिकोह अब गुजरात के कच्छ पार कर अहमदाबाद में सैनिको को संगठित कर दिल्ली पर आक्रमण हेतुप्रस्थान किया। साथ ही अजमेर में' जसवंत सिंह से सहयोग के लिए संदेश भेजा। जसवन्त सिंह ने राठौरों और अन्य राजपूतों के साथ दारा के सहयोग का आश्वासन दिया लेकिन।औरंगजेब

ने कूटनीतिक चाल का सहारा लिया और जयसिंह के सहयोग से जसवंत सिंह द्वारा दाराशिकोह को सहयोग का दिया गया आश्वासन अब मात्र आश्वासन ही रह गया।

अजमेर में दाराशिकोह को जसवन्तसिंह एवं अन्य राजपूतों से सहयोग न मिलने के कारण साथ ही कोई अन्य विकल्प न होने की स्थिति में एक माह युद्ध ही रास्ता बचा थायह युद्ध 01 मार्च 1659 ई० को प्रारम्भ हुआ जिसे देवराई के युद्ध के नाम से जाना जाता है। 14 मार्च 1659 को दाराशिकोह युद्ध में पुनः पराजित हो गया और युद्ध भूमि से भाग। अब दाराशिकोह ईरान भागने की योजना बना रहा था दादर के जमीदार (जिसका दारा ने बादशाह से प्रार्थना करके उसके प्राणों की रक्षा की थी) के यहाँ शरण ली। कृतज्ञ अफगानी सरदार जीवा ने द्वारा की रक्षा की प्रतिज्ञा की, लेकिन औरंगजेब और जयसिंह के दबाव के कारण उसने विश्वासघात किया और 09 जून 1659 ई० को दाराशिकोह उसके छोटे लड़के तथा उसकी दोनों पुत्रियों को कैद कर बहादुर खाँ को सौंप दिया।[9] मिर्जा राजा जय सिंह एवं बहादुरखाँ दाराशिकोह को लेकर 23 अगस्त को दिल्ली पहुचें। दारा को अपमानित करने के उद्देश्य से उसे एक 29 अगस्त को वृद्ध हथनी पर बैठाकर शाहजहानाबाद के प्रमुख मार्गो पर घुमाया गया ताकि जनता का भ्रम दूर हो जाये कि दारा को बंदी बना लिया गया है। फ्रांसिसी यात्री बर्नियर विवरण प्रस्तुत करता है–इस अभागे का तमाशा देखने को भीड़ खड़ी थी, सब ओर से रोने चिल्लाने के शब्द सुनाई पड़ रहे थे। स्त्री, पुरुष, बच्चे इस प्रकार चिल्लाते थे मानो उन पर बहुत बड़ी भयानक विपत्ति पड़ी हो फिर भी प्यारे राजकुमार दाराशिकोह कोछुड़ाने का साहस किसी में भी नहीं था।[10]

उसी शाम दारा के भाग्य के निर्णय के लिए मत्रियों की एक गुप्त परामर्श बैठक आहूत की गयी जिसमें प्रमुख प्रश्न यह था कि दाराशिकोह को मृत्यू दण्ड दिया जाए या आजीवन कारावास में रखा जाय? दारा का विरोधी दानिशमंद खाँन दारा को आजीवन कारावास और ग्वालियर के किले में बंद रखने का परामर्श दिया था लेकिन शाइस्ता खाँ, मुहम्मद अमीन खा, बहादुर ने मृत्यू दण्ड की शिफारित की थी उल्लेखनीय है कि दारा को मृत्यू दण्ड दिये जाने की सबसे प्रबल शिफारिस उसकी बहन रोशनआरा ने किया था।[11] औरंगजेब की मंशा के अनुसार तत्कालीन धर्माधिकारियों ने दाराशिकोह पर इस्लाम के विरुद्ध आचरण करने तथा धर्मभ्रष्ट होने के दोष में मौत की सजा पाने योग्य बताकर मृत्यु दण्ड का फतवा (धर्म आज्ञा) पर हस्ताक्षर कर दिये। 30 अगस्त 1659 ई० को नजरवेज और अन्य गुलामों ने कैदखाने में जाकर दाराशिकोह का सिर कलम कर दिये। दारा का सिर को कैदी जीवन काट रहे पिता शाहजहाँ के समक्ष प्रस्तुत किया गया तथा उसके लाश को कई टुकडों में काटकर` हाथी पर रख कर शहर के प्रमुख मार्गो पर घुमाया गया और अंत में हुमायूँ के मकबरे के बगल में दफन कर दिया गया।[12]

II

दाराशिकोह का आध्यात्मवाद ईश्वर (तौहीद) कोपहचानना था। ईश्वर को पहचानना या साक्षात्कार तभी सम्भव है जब उसका पूर्ण ज्ञान हो सके। ईश्वर को पहचानने के अनेक मार्ग है। दाराशिकोह ईश्वर (हौदीद) के प्राप्ति के लिए अनेक संतो एवं सूफियों के शरण में जाता है। दाराशिकोह का मानना था कि अपने कर्मों एवं क्रियाओं से ईश्वर तक पहुंचना सम्भव नही बल्किएक मात्र आश्रय उनकी दया है।[13] लाहौर अभियान के दौरान दारा ने अपनी प्रथम शिशु के मृत्यू से विचलित होकर अध्यत्मवाद की ओर प्रवेश किया था। उसका अध्यात्मवाद अंधविश्वास तक की यात्रा है। वह सूफी और हिन्दू संतो (साधकों) पर ज्यादा विश्वास करता था। वह अपनी सफलता को अध्यात्मिकता से जोड़ कर देखता था। कन्धार अभियान के दौरान वह अपने साथ कई जादूगरों को लेकर गया था। उसका विश्वास था कि जादू से विरोधियों के अन्न में कीड़े पड़ जायेंगे और शत्रु सेना में फूट पड़ जायेगी[14] जादूगरों में एक प्रसिद्ध संन्यासी या तांत्रिक साधु इंद्रगिरि था जो 40 आत्माओं/प्रेतों का अधिपति माना जाता था। यहदाराशिकोह के कन्धार अभियान का हिस्सा था लेकिन यह दारा का किसी प्रकार कोई मदद नही कर पाया। इसी प्रकार कई अन्य सूफी एवं साधु दारा से अनुदान और भोजन प्राप्त करते रहे। उल्लेखनीय है कि दारा ने इन जादूगरों के जादूगरी को देखा था। सूफी संतों के साधना से

अवगत हुआ और आरम्भ से इस्लाम के संतों के चमत्कारों को समझा और ग्रंथ सफीनतुल–औलिया, सकीनतुलऔलिया और रिसालै हकनुमा की रचना कर डाली।

दाराशिकोह सूफी संतों से बहुत ज्यादा प्रभावित था। प्रारम्भ में दारा पर चिस्ती सिलसले के प्रमुख संतों के का ज्यादा प्रभाव था। अकबर तथा उसके बाद के बादशाह प्रायः चिस्ती सिलसले के सूफी संतो से प्रभावित थे। लेकिन दारा चिस्ती सिलसले सूफी संतो के प्रभाव से मुक्त होकर कादरी सिलसिले के सूफी संत मिया मीर के आकर्षक व्यक्तित्व और अब्दुल कादिर जिलानी की दानशीलता और जनसेवा की भावना उसे कादिरी सिलसले की ओर आकर्षित होने के लिए बाध्य किया। वह कादिरी सिलसिले को पूर्णतया जाना–समझा और मिया मीर के व्यक्तित्व से आकर्षित होकर एक ग्रंथ सीफीनतुल– औलिया की रचना कर डाली जो मुख्यतः मिया मीर की जीवनी और आध्यात्मिक यात्रा की भिन्न मंजिलों का प्रसंगतः उल्लेख है। इस ग्रंथ की रचना जनवरी 1642 ई0 में पूर्ण कर ली थी इस समय दारा की उम्र27 वर्ष थी।[15]ऐसा प्रतीत होता है कि आकाशवाणी द्वारा ईश्वर का संदेश प्राप्त होने के बाद दारा ने 'कादरिया सम्प्रदाय' की दीक्षा ली। दीक्षा के उपरान्त दीक्षित सूफियों के लिए एक पुस्तक 'रिसालै हकनुमा' की रचना की। इस ग्रंथ में विभिन्न सूफियों के विभिन्न स्थानों पर उनकी गति– विधियाँ एवं यौगिक क्रियाओं का सारांश है। इस ग्रंथ की रचना की शुरुआत दारा ने कश्मीर में प्रारम्भ किया। 1645 में वह सम्राट शाहजहाँ के साथ कश्मीर अभियान पर था। इस ग्रंथ की रचना के समय वह काफी दुखी था क्योंकि पत्नी नादिरा बेगम बीमार थी। अतः 'रिसालै हकनुमा 'दारा के वास्तविक चरित्र (अवगुणों एवं शुभगुणों) को परिलक्षित करता है।[16]

दारा लिखता है कि ''उसमें और पैगम्बर द्वारा अंगीकृत क्रियाओं, ध्यान विधियों और बैठने, चलने, फिरने और कार्य करने की शैलियों में कोई अन्तर नहीं है।'' हालांकि दारा द्वारा प्रस्तुत यह अवधारणा कोई नई नहीं थी बल्कि हिन्दू योगियों में इस के प्रमाण अनेक वेदान्त एवं योग दर्शन के प्राचीन संस्कृत ग्रंथों में विराजमान है लेकिन दारा कहता है कि उसकी पुस्तिका सूफी सम्प्रदाय के प्रमाणित ग्रंथों का सार है। दारा सर्वेश्वरवादी था उसका मानना था कि ईश्वर कण–कण में विद्यमान है, अर्थात जगत को प्रकाश देने वाला सूर्य बालू के प्रत्येक कण मेंहैदेखा जा सकता है। दारा शिकोह लिखता है कि ''इस (स्वयं के लिए). फकीर के हृदय में इस्लाम के वाह्य अंग गायब हो गये है और सच्ची नास्तिकता (कुफ्र) मुझको प्रकट हो गयी है। मैं यज्ञोपतीव धारी मूर्ति पूजक हो गया हूँ। नही–मैं स्वयं अपना उपासक (खुद पस्त) हो गया और मैं आत्म पूजकों के मन्दिर का पुजारी बन गया (दैर नशी) बन गया हूँ[17] दाराशिकोह ईश्वर को एक बिन्दु या शून्य के समान मानता है उसका कहना था कि इसकी कोईलम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई नहीं है। यह सर्व व्याप्त है इसे केवल महसूस करने की जरूरत है। ईश्वर को जानने, महसूस करने के क्रम में दाराशिकोह कुरान का गहराई से अध्ययन करता है तब उसे गुप्त पुस्तक का बोध होता है। वह यह मानता है कि 'उपनिषद' ही कुरान की गुप्त पुस्तक है।[18] हालांकि दाराशिकोह इस बात से असहमति हो सकती है। इसी भावना से प्रेरित होकर वह 52 उपनिषिदों का फारसी भाषा में अनुवाद किया। उपनिषद का फारसी में अनुवाद वह बनारस में करता है इसके लिए वह कुछ संन्यासियों और बनारस के 150 पण्डितों (जो वेदों और उपनिषदों के विद्वान थे) की सहायता से 6 माह में पूर्ण कर लिया।[19] 1656ई० में दारकिशकोह ने योवाशिष्ठ रामायण का फारसी भाषा में भूमिका लिखी और इसी के देख–रेख में तर्जुमें (अनुवाद) योगवशिष्ठ नामक ग्रंथ तैयार किया गया। बाद में मौलवी अबुल हसन ने 'तुर्जमें योग वशिष्ठ' का उर्दू भाषा में अनुवाद 'मिन्हाज–उस–सलीकीन' किया जो उत्तर भारत में बहुत प्रसिद्ध एवं जनप्रिय है।[20]

दाराशिकोह के अध्यात्मवाद का मूल्यांकन उसके द्वारा रचित संस्कृत ग्रंथों के साथ ही साथ अन्य गंथो के निष्कर्षो के आधार पर किया जा सकता है। निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि दाराशिकोह अद्वैत वेदान्तवाद की ओर परिवर्तित हो गया था। दाराशिकोह एक ओर बादशाह बनने की महत्वाकांक्षा रखता था वही दूसरी ओर अध्यात्मकवाद की ओर बहुत गहराई से जुड़ा।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हसरत विक्रम जीत –दाराशिकोह : लाइफ एण्ड वर्क्स, विश्व भारती पब्लिकेशन डिपार्टमेंट, कोलकत्ता, 1953, पृ0 – 03, 1
2. कानूनगो कालिका रंजन– दादाशिकोह गया प्रसाद एण्ड संस बाके विलास, आगरा,1958, पृ0.03
3. वहीं पृ० –05,
4. वही पृ० 08
5. खाफी खा–मुन्तखबर एन लुबाब का अंग्रेजी अनुवाद इलियट, सर,एच०एम०एण्ड डाउसन, जान, भारतवर्ष का इतिहास हिन्दी अनुवाद–पी०आर० भारतीय एल०एन० शर्मा, प्रकाशक इण्डोलाजिकल बुक हाउस, बासफाटक, वाराणसी, पृ० 1961, पृ० 03
6. सरकार, सर यदुनाथ – औरंगजेब, हिन्दी ग्रंथ रहत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 1970,पृ०–43,
7. वहीं, पृ0 – 69,
8. त्रिपाठी, आर० पी०, राइज एवं फाल आफ मुगल इम्पायर, सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, पुनर्मुद्रण 1994,पृ० 491
9. सक्सेना, बनारसी प्रसाद – मुगल सम्राट शाहजहाँ, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पुनर्मुद्रण 1987, पृ०–361
10. फ्रैक्सि बर्नियर, एम०डी०–बर्नियर की भारत यात्रा, अनुवाद गंगा प्रसाद गुप्त, नेशनल बुल ट्रस्ट इण्डिया, नई दिल्ली 1997, पृ० 67
11. कानूनगो कालिका रंजन–पूर्वोद्धृत, पृ0.03
12. खाफी खा–मुन्तखबर 3एन लुबाब का अंग्रेजी अनुवाद इलियट, सर०एच०एम०एण्ड डाउसन, जान भारतवर्ष का इतिहास हिन्दी अनुवाद–पी०आर० भारतीय एल०एन० शर्मा, प्रकाशक इण्डोलाजिकल बुक हाउस, बासफाटक, वाराणसी, पृ० 34,
13. कानूनगो कालिका रंजन–पूर्वोद्धृत, पृ0.49
14. वही, पृ०21
15. हसरत विक्रम जीत –पूर्वोद्धृत,पृ०65
16. कानूनगो कालिका रंजन–पूर्वोद्धृत,पृ0.69–70
17. वहीं, पृ० 58–59
18. वही, पृ० 72
19. हसरत विक्रम जीत –पूर्वोद्धृत,पेज–256
20. कानूनगो कालिका रंजन–दादाशिकोह, गया प्रसाद एण्ड संस बाके विलास, आगरा,पाद् टिप्पणी पृ०–72